Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

अभिज्ञानशाकुन्तलम् में वर्णित शृंगार रस का स्वरूप

मुकेश दायमा*

* सहायक आचार्य (संस्कृत) राजकीय महाविद्यालय, परतापुर, गढ़ी, जिला बाँसवाड़ा (राज.) भारत

प्रस्तावना – महाकवि कालिदास विश्वविख्यात काव्य स्रष्टा, कवि–कुल–गौरव, सत्यम् शिवं–सुन्दरम् को समावेशित कर शाश्वत सनातन भारती का साज शृंगार करने वाले एक सफल महाकाव्यकार, सर्वोत्कृष्ट नाटककार एवं गीति काव्य के प्रेणेता हैं। वे न केवल संस्कृत अपितु सम्पूर्ण जनचेतना की साहित्यिक समृद्धि के एकमात्र प्रतिनिधि कवि हैं। इन्होने वैदिककाल से लेकर अपने युग तक जिन सशक्त विचारों एवं शाश्वत भावों का चित्रण किया है, वे सदैव युगों युगों तक पाठकों के हृदयों को अभिभूत करते रहेंगे। उनके बारे में यह कथन अतिशयोक्तिपूर्ण नही होगा की महाकवि कालिदास सच्चे अर्थो में सौन्दर्य और प्रेम के कला प्रधान कवि है क्योंकि उनकें काव्यों में जीवन की समस्त अनुभूतियों के होने से सभी रस दृष्टिगत होतें हैं परन्तु शृंगार रस को ही उन्होंने प्रधानता दी है। उनका शृंगार संयोग से मधुर तथा वियोग से कारूणिक है। प्रकृति द्धारा प्रदत्ता ऐन्द्रिय जीवन का सहज, सुलभ, सजीव एवं सशक्त अनुवचन तथा सौन्दर्य की विशिष्टता से जन–जीवन कें सम्पूर्ण अस्तित्व को ऐन्द्रिय आभा से आलोकित कर उसे रससिक्त भाषावली में अभिव्यक्ति प्रदान करना, यही महाकवि कालिदास की बहुमुखी प्रतिभा पूर्णरूप से प्रस्फुटित हुई हैं। उनकी रचनाओं में 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' नाटक न केवल भारतवर्ष में अपितु सम्पूर्ण विश्व का सर्वोत्ताम नाटक रत्न है।अभिज्ञान शाकुन्तलम् का अनुवाद संसार की प्रमुख भाषाओं में किया गया है।

इस नाटक में कालिदास की नाट्यकला का चरम परिपाक है।इसी कारण इन्हें रविन्द्रनाथ टैगोर ने **'भारत का शेक्सपीयर'** कहा है। भारतीय समाचालोचकों ने अभिज्ञानशाकुन्तलम को संस्कृत साहित्य में सर्वश्रेष्ट नाट्यकाव्य बतलाया गया है –

'काव्येषु नाटकं रम्यं तत्ररम्या शकुन्तला।
तत्रापि च चतुर्थोऽङ्कः तत्रश्लोकचतुष्टयम्।।'

अर्थात् काव्यों में नाटक रम्य होता है, नाटकों में अभिज्ञान शाकुन्तलम् उसमें भी चतुर्थ अंक और उसमें भी श्लोक चतुष्टय रम्य है। इस नाटक के चतुर्थ अंक को विद्धानों ने सर्वश्रैष्ठ बतलाया गया है क्योंकि यह अंक सम्पूर्ण नाट्क का केन्द्र बिन्दू है। चतुर्थ अंक कों शाकुन्तलम् में सर्वोत्तम माननें का मुख्य कारण यही है कि इसमें जहाँ एक ओर अंक का प्रारम्भ रौद्र रस से हुआ है वही दुसरी ओर अवसान करूण रस में हुआ हैं।

महाकवि कालिदास रससिद्ध कवि है। उन्होनें सर्वाधिक कला की चातुर्यता सर्वत्र औचित्य के निर्वाहन में दिखाई है, उन्होनें किसी भी वृत को उनके मार्मिक भाव को उत्कृष्ट व सहज रूप में प्रस्तुत किया है जो बिना किसी आन्तरिक राय से पाठकों के मन में प्रविष्ट होकर पाठकों को प्रभावित किये बिना नही रहता है। कविकुल गुरू महाकवि कालिदास ने अपनी रचनाओं सर्वत्र औचित्यका निर्वाह किया है। कवि कालिदास ने सर्वत्र औचित्य का ध्यान रखतें हुए अपने काव्य मे रसयोजना की है, क्योंकि जहां औचित्य का निर्वाह नही होता वहां रस प्रभावहीन होने की संभावना रहती है, और कहा भी कहा गया है–

अनौचित्यादृते नान्यद् रसभंग्ङस्य कारणम्।
प्रसिद्धौचित्यबन्धस्तु,रसस्योपनिषत्परा।।

अर्थात् अनौचित्य के अतिरिक्त रस–भंग्ङ का अन्य कोई कारण नही होता है। काव्य मे औचित्य का निर्वाह ही रस–परिपाक का कारण होता है। महाकवि कालिदास ने सर्वत्र औचित्य का प्रश्रय ग्रहण कर रस व्यापार किया है, क्योकि रस को काव्य का प्राणतत्व माना गया हैं।

कविराज विश्वनाथ नें साहित्य दर्पण में रस को परिभाषित कर कहा है–**'वाक्य रसात्मकं काव्यम्'**अर्थात्रसात्मक वाक्य ही काव्य है। रस संयोजन व्यापार में उन्होनें सर्वत्र स्वाभाविकता का आश्रय लिया है, यही कारण है कि कालिदास की रचनाओं के अध्ययन से पाठकों को प्रारम्भ से लेकर अन्त तक रसों की अनुभूति होती रहती है। उनकी काव्य रचनाओं में काव्य के सभी तत्व सरल, सजीव, स्वाभाविक व आनन्ददायक है। अत: रसो की अनुभूति में सहायक सिद्ध हुयें है। उनके काव्य में अंङीरस के अलावा बीच–बीच में जो रस आये है, वे स्वयं तो रोचक है ही साथ ही साथ प्रधान रस की परिपूर्णता व चमत्कारिता मे भी सहायक है। इस रस–व्यापार मे सफलता के कारण ही महाकवि कालिदास को **'कविता वनिता का विलास'** कहा गया है। यहाँ रसराज शृंगार रस के कार्यकारण को प्रश्रय देना पड़ेगा।

महाकवि कालिदास रसराज शृंगार रस के सरस कवि है, क्योंकि उसके काव्यों में प्राय: ललित शृंगार रस की ही व्यंजना की है। अत: महाकवि कालिदास शृंगार रस के प्रतिष्ठित कवि है लेकिन उन्होने अन्य रस यथा– करूण, वीर, अद्भुत, भयानक, वात्सल्य, तथा, हास्य रस की उपेक्षा भी नही की है अर्थात् यथा स्थान उक्त रसों का भी प्रयोग किया है। महाकवि कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तलम् में शृंगार रस के दोनों पक्षों की अभिव्यक्ति कलात्मक ढंग से प्रस्तुत की है। इस संदर्भ में भी उन्होने औचित्य का पूर्ण ध्यान रखा है। शृंगार रस में प्रथम पक्ष, संयोग पक्ष का प्रयोग प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा सप्तम अंक में हुआ है तथा द्वितीय पक्ष वियोग का अभिज्ञान शाकुन्तलम् के द्वितीय अंक, तृतीय अंक के प्रारम्भ तथा अन्त में, व सम्पूर्ण षष्ठ अंक में ही मुख्य रूप से प्राप्त होता है। यहाँ वियोग शृंगार द्धारा संयोग

शृंगार की सम्पुष्टि की गई है, क्योंकि दोनों मे से किसी एक पक्ष का प्रयोग पाठक को रूखे–सुखे तथा मिठास रहित भावों की अनुभूति कराता है। अत: पाठकों की रूचि व जिज्ञासा को बनायें रखने के लिये सरस व मधुर भावों की अभिव्यक्ति होनी जरूरी है जो **संयोग शृंगार पक्ष वियोग शृंगार पक्ष** दोनों पक्षों के द्वारा ही संभव हैं। इसी को लक्ष्य करके ही कविराज विश्वनाथ ने लिखा है–

न विना विप्रलम्भेन संभोग: पुष्टिमर्हति।
कषायिते हि वस्त्रादौ भूयान् रागो विवर्धते।।

अर्थात् विप्रलम्भ शृंगार के बिना संयोग शृंगार पुष्टि को प्राप्त नही करता। वियोग के बाद ही संयोग स्वादयुक्त लगता है। कषैलें वस्त्रादि पर ही गहरा रगं चढ़ता है उसी प्रकार सुखे मन में स्नेह प्रेम अधिक चढ़ता है। यही कारण है कि शृंगार प्रधान काव्यों में विप्रलम्भ शृंगार का विस्तृत वर्णन मिलता है।

अभिज्ञानशाकुन्तलम् में शृंगार रस का स्वरूप:।

(1)संयोग या सम्भोग शृंगार– अभिज्ञान शाकुन्तलम् के प्रथम अंक मे वृक्षों को सींचते हुयें सखियों से वार्तालाप करती हुई शकुन्तला को देखकर राजा दुष्यन्त के हृदय मे उसके प्रति प्रेमानुराग उत्पन्न होता है और वह कहता है–**'मधुरमासां दर्शनम्'** अर्थात् इसका रूप तो अत्यन्त ही मन को आकषित करने वाला है। दुष्यन्तशकुन्तला को अतिसुन्दरी के रूप में देखता है और उसके स्वाभाविक रूप सौन्दर्य की प्रशंसा करते हुयें कहता है–

(1) सरसिजमनुविद्ध शैवलेनापि रम्यं मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्मलक्ष्मीं तनोति।
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी किमिवहि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्।।

अर्थात् जिस प्रकारशैवाल से आच्छादित कमल भी सुन्दर लगता है, मलिन कलंक भी चन्द्रमा कीशोभा को बढ़ता है, उसी प्रकार तपस्वियों की वेशभूषा वल्कल वस्त्र भी इस सुन्दरी के सौन्दर्य को द्विगुणित कर रहा है, कम नही कर रहा है।अर्थात कहने का तात्पर्य यह है कि सुन्दर रूप वाले व्यक्तियों के लिए सभी वस्तुएँशोभा को बढ़ाने वाली ही होती है।–[1]

(2) अधर: किसलयराग: कोमलविटपानुकारिणौबाहू।
कुसुममिव लोभनीयं यौवनमङ्गेषु सन्नद्धम् ।।

राजा दुष्यन्त शकुन्तला के लावण्य पर मुग्ध है उसे पुष्पित लता के रूप में देखता है। वह कहता है, इस शकुन्तला के अधरोष्ट किसलय के समान लाल है उसकी दोनों भुजायें दो कोमल शाखाओं के समान है और पुष्प के समान हरने वाला यौवन इस शकुन्तला के सभी अंगों/अवयवो में व्याप्त है– [2]

(3) चलापाङ्ग दृष्टि स्पृशसि बहुशो वेपथुमती,
रहस्याख्यायीव स्वनसि मृदुकर्णान्तिकचर:।
करौ व्याधुन्वत्या: पिबसि रतिसर्वस्वमधरं,
वयं तत्वान्वेषान्मधुकर हतास्त्वं खलु कृती।।

राजा दुष्यन्त अप्रितम् सुन्दरी शकुन्तला को मन से अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार कर लेता है। अत: भ्रमर के द्वारा शकुन्तला के मुखमण्डल पर मण्डरानें व अधरोष्ठ का स्पर्श भी उसे सहन नही होता है।– [3]

(4) वाचं न मिश्रयति यद्यपि मद्वचोभि:, कर्णं ददात्यभिमुखं मयि भाषमाणे।
कामं न तिष्ठति मदाननसम्मुखीना, भूयिष्ठमन्यविषया न तु दृष्टिरस्या:।।

तप:पूत आश्रम में निवास करने वाली भोली–भाली शकुन्तला भी राजा दुष्यन्त को देखकर उसकें असाधारण रूप सौन्दर्य को देखकर उस पर आकर्षित हो जाती है और अपने मनोगत विलास चेष्टाओं के भावों के विषय में मन ही मन विचार करती है–**'किं नु खल्वियं जनं प्रेक्ष्य तपोवनविरोधिनो विकारस्य गमनीयास्मि संवृता'।।**

राजा दुष्यन्त उसके भावों सें यह समझ लेता है कि –**'यथा वयं तथैवेयमप्यस्मासु अनुरक्ता'।**

राजा दुष्यन्त की आंग्डिक चेष्टाओं को देखकर अनुमान लगा लेता है कि यह भी मुझ पर उसी प्रकार अनुरक्त है जैसे मैं उस पर, क्योंकिं इसकी दृष्टि में मेरें अलावा दुसरी की तरफ नही जाती है।– [4]

(5) स्निग्धं वीक्षितमन्यतोऽपि नयने यत्प्रेरयन्त्या तया, यातं यच्च नितम्बयोर्गुरुतया मन्दं विलासादिव।
मा गा इत्युपरुद्धया यदपि सा सासूयमुक्ता सखी, सर्वं तत्किल मत्परायणमहो कामी स्वतां पश्यति।।

द्वितीय अंक में विषयाभिलाषी राजा दुष्यन्त सर्वत्र अपना ही भाव देखता है। इससें यह प्रतीत होता है कि शकुन्तला के द्वारा किये गयें सभी कार्य उसी को लक्ष्य करके किये जा रहें है। उसका प्रेमपूर्ण राजा पर दृष्टिपात, उसका विलासपूर्ण गमन, सभी उसी को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए किये जा रहें है– [5]

(6) अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररूहै, रनाविद्धं रत्नं मधु नवमनास्वादितरसम्।
अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तदुरूपमनघं, न जाने भोक्तारं कमिह समुकपस्थास्यति विधि:।।

राजा दुष्यन्तशकुन्तला को विलक्षण तथा अलौकिक सुन्दरी मानता है तथा उसकी प्राप्ति में संदिग्धचित्त है। अतएव उसे लक्ष्य कर कहता है, कि उसका निष्कलंक सौन्दर्य किसी के द्वारा न सूँघे गये फूल के समान, नाखूनों से न छेदे गये किसलय के समान, न बीधे गयें रत्न के समान, व जिसके रस का अभी तक आस्वादन नहीं किया गया है ऐसें ताजे मधु के समान और पुष्पों से अखण्डित फल के समान है। न जाने विधाता किसे उसको भोगने वाला बनायेगा।– [6]

(7) अभिमुखे मयि संहृतमीक्षणं हसितमन्यनिमित्तकृतोदयम्।
विनयवारितवृत्तिरतस्तया न विवृतो मदनो न च संवृत:।।

पुन: मुग्धानायिकाशकुन्तला कृत कामचेष्टाओं से उसके हृदय में जागृत अपने प्रति प्रेमभाव को दुष्यन्त जान लेता है तथा **'लब्धावकाशा मे प्रार्थना'** अर्थात् मेरी इच्छा को अवसर प्राप्त हो गया, वह यह सोचकर आश्वस्त हो जाता है, कि मेरी तरहशकुन्तला भी रतिभाव से अनुलिप्त है। वह कहता है कि मेरे उसके सामने देखने पर, वह मुझ पर से दृष्टि हटा लेती थी और किसी दूसरे कारण को देकर हँस पड़ती थी। अत: उसनेशील के द्वारा नियन्त्रित चेष्टा वाले कामभाव को न तो प्रकट किया और नही छुपाया गया है।– [7]

(8) किंशीतलै: क्लमविनोदिभिरार्द्रवातान् संचारयामि नलिनीदल–तालवृन्तै:।
अंके निधाय करभोरू यथासुखं ते संवाहयामि चरणावुत पद्मताम्रौ।।

शकुन्तला की ओर से सहमति प्राप्त होने पर राजाशकुन्तला के

प्रेमसागर मे आकण्ठ निमग्न हो जाता हैं तथा हर प्रकार सेशकुन्तला को सुख पहुँचाने का प्रयास करता है वह कहता है कि, क्या मैशीतलथकान को दुर करने वाले कमल-पत्र के पंखे से ठण्ड़ी हवा करूँ अथवा हे करभोरू! तुम्हारे कमल के समान लाल चरणों को गोद मे रखकर जिस प्रकार तुम्हें सुख मिले उस प्रकार दबाऊँ। - [8]

इस प्रकार तीसरे अंक तक संभोग श्रृंगार अक्षुण्ण रूप से चलता रहता है। सप्तम् अंक के अन्त में दुष्यन्त और शकुन्तला के पुनर्मिलन के समय पर भी संयोग श्रृंगार का सुन्दर चित्रण हुआ है। जहाँ राजा उसे देखकर-**'वसने परिधूसरेदधानानियमक्षाममुखी धृतैकवेणि:'** कहकर खेद प्रकट करता है तथा उसके पैरों में गिरकर क्षमायाचना करता है, इस प्रकार इन दोनो का पुनर्मिलन होता है। दुष्यन्त दोनों के मिलन को चन्द्ररोहिणी का मिलन बतलाता है। **'उपरागान्ते शशिन:समुपगता रोहिणी योगम्'** इस प्रकार अभिज्ञानशाकुन्तलम् में महाकवि कालिदास ने संयोग श्रृंगार का वर्णन बहुत ही मनोहारी व हृदयस्पर्शी तरीके से प्रस्तुत किया है।

(2) वियोग या विप्रलम्भ श्रृंगार - अभिज्ञान शाकुन्तलम् में सम्भोग श्रृंगार की अपेक्षा विप्रलम्भ श्रृंगार का अधिक विस्तार से वर्णन किया गया है और सम्भोग श्रृंगार की सुम्पुष्टि की गई हैं। शाकुन्तल के द्वितीय अंक में, तृतीय अंक के प्रारंभ में और अन्त मे तथा सम्पूर्ण षष्ठ अंक में विप्रलम्भ श्रृंगार तथा बीच-बीच में अन्य रसों की भी पुष्टि हुई है। द्वितीय अंक में दुष्यन्त शकुन्तला की प्राप्ति को सुलभ न मानकर खेद प्रकट करता है- **'कामं प्रिया न सुलभा।'** वह शकुन्तला को विधाता की अनुपम कृति मानता है तथा उसे अपनी प्रेमिका बनाने के लिए व्याकुल हो जाता है-**'न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधि:'** इस भाव से शर्कित विदूषक से अपनी व्यथा कहता है।

(9) तव कुसुमशरत्वं शीतरश्मित्वमिन्दोर्द्वयमिदमयथार्थं दृश्यते मद्विधेषु ।
विसृजति हिमगर्भैरग्निमिन्दुर्मयूखैस्त्वमपि कुसुमबाणान्वज्रसारीकरोषि।।

तृतीय अंक में पहले दुष्यन्त की कामपीड़ित दशा का चित्रण है, जहाँ वह शकुन्तला की प्राप्ति के लिए अनेक उपाय सोचता है, पर कुछ करने में अपने असमर्थ पाकर दु:खी होता है -**'जाने तपसो वीर्यं सा बाला परवतीति मे विदितम्'** इस काम पीडित अवस्था में उसे दिन में भी चन्द्रमा दिखाई पड़ता है जो कि अपनी हिममयी किरणों से अग्निवर्षा करता प्रतीत होता है और कुसुमायुध भी उसके लिए वज्रायुध बन गया है- [9]

(10) इदमशिशिरैरन्तस्तापाद्विवर्णमणीकृतं, निशि निशि भुजन्यस्तापाङ्गप्रसारिभिरश्रुभि:।
अनभिलुलितज्याघाताङ्कं मुहुर्मणिबन्धनात्कनकवलयं स्रस्तं स्रस्तं मयाप्रतिसार्यते।।

इतना ही नहीं वह शकुन्तला के वियोग में अहर्निश जागते व रोते रहने से अत्यधिक कृशकाय हो गया है। अत:उसका स्वर्णवलय ढ़ीला होकर नीचे खिसकने लगता है-[10]

(11) क्षामक्षामकपोलमाननमुर: काठिन्यमुक्तस्तनं, मध्य: क्लान्ततर: प्रकामविनतावंसौ छवि पाण्डुरा।
शोच्या च प्रियदर्शना च मदनक्लिष्टेयमालक्ष्यते, पत्राणामिव शोषणेन मरूता स्पृष्टा लता माधवी।।

दूसरी ओर शकुन्तला भी राजा दुष्यन्त के विरह में अत्यधिक पीड़ित है। उसकी सखियाँ विरहतापशमनार्थ उस पर उशीरानुलेप कर उसे पुष्पशय्या पर लिटाकर उस पर नलिनी पत्र व्यंजनों से हवा करती है। दुष्यन्त उसकी सखियों से सहमति प्रकट करते हुए कहता है-[11]

(12) अयं स ते तिष्ठति संगमोत्सुको विशङ्कसे भीरू यतोऽवधीरणाम् ।
लभेत वा प्रार्थयिता न वा श्रियं श्रिया दुरापः कथमीप्सितो भवेत्।।

उधर शकुन्तला भी राजा दुष्यन्त के कारण कामसंतप्ता तथा व्यथिता है, वह स्वयं कहती है कि दुष्यन्त के बिना वह जीवित नही रह सकती है। सखियाँ उसकी अभिलाषा का अनुमोदन कर उससे कामपत्र के लिखने का आग्रह करती है। दुष्यन्त कामपत्र के विषय **'तव न जाने हृदयम्'** को सुनकर उस भीरू हृदया शकुन्तला को उद्देश्य कर कहता है- हे भीरू! जिस दुष्यन्त से तू तिरस्कार की आंशका कर रही है, वह दुष्यन्त तुमसे मिलने के लिए उत्सुक खड़ा है। चाहने वाले को भले ही लक्ष्मी मिले या न मिलें, परन्तु जिसे स्वयं लक्ष्मी चाहे, वह उसके लिए कैसे दुर्लभ हो सकता है? वह तो उसे अवश्य मिलेगा। -[12]

(13) तपति तनुरात्रि मदनस्त्वामनिशं मां पुनर्दहत्येव।
ग्लपयति यथा शशांङ्क न तथाहि कुमुद्वतीं दिवस:।।

और फिर तनुरात्रि कहता हुआ उसके समीप पहुँच कर अपनी वियोग दशा को अभिव्यक्त करता है तथा वह कहता है- हे शकुन्तले! कामदेव, तुमको निरन्तर तपा रहा है, परन्तु मुझे तो जलाये ही डाल रहा है, क्योंकि दिन जितना चन्द्रमा को क्षीण करता है, उतना कुमुदनी को नही। -[13]

(14) रम्यं द्वेष्टि यथा पुरा प्रकृतिभिर्न प्रत्यहं सेव्यते, शय्याप्रान्तविवर्तनैर्विगमयुनिद्र एव क्षपा:।
दाक्षिण्येन ददाति वाचमुचितामन्त: पुरेभ्यो यदा, गोत्रेषुस्खलितस्तदा भवति च व्रीडाविलक्षश्चिरम्।।

षष्ठ अंक में अँगूठी के मिलने पर दुष्यन्तशकुन्तला का स्मरण कर वह पुन: पश्चाताप करता है। उसकी इस अवस्था का वर्णन कञ्चुकी करता है- वह कहता है, राजा दुष्यन्त रमणीय वस्तुओं से धृणा करते है। पहले की तरह मन्त्रियों से प्रतिदिन नहीं मिलते है। जागते हुए भी बिस्तर के किनारों पर करवटें बदलते हुए रात्रियाँ व्यतीत करते है। जब उदारता के कारण अन्त:पुर की स्त्रियों को उचित उत्तार देते है तब नामोच्चारण में शकुन्तला का नामोच्चारण करके बहुत देर लज्जा के कारण व्याकुल रहते है।- [14]

(15) मुनिसुताप्रणयस्मृतिरोधिना, मम च मुक्तमिदं तमसा मन:। मनसिजेन सखे प्रहरिष्यता धनुषि ह्याम्रशरश्च निवेशित:।।

इसी विरह अवस्था के कारण दुष्यन्त ने वसन्तोत्सव को रोक दिया, फिर भी वसन्त तो आ ही गया। अत: आम्रमञ्जरी को देखकर उसका वियोग और उद्दीप्त हो उठता है, वह विदूषक से कहता है-[15]

अपनी व्याकुलता के कारण चित्रगत शकुन्तला को आँसुओं से धुंधली हुई दृष्टि के कारण नहीं देख पाता तथा वह दु:खी होता है। यद्यपि वह शकुन्तला की प्रतिकृति में उसकी प्रिय वस्तुओ का समावेश करना चाहता है, लेकीन वह ऐसा करनें में अपने आप को असमर्थ पाकर वह अतिव्याकुल होकर विदूषक से कहता है-**'सखे, त्रायस्व माम्।'** शकुन्तला के चित्रगत भ्रमर के प्रति राजा का कथन उसकी विरहजन्य उन्मादावस्था का ही द्योतक है। इसी प्रकार अँगूठी के प्रति उसका उपालम्भ भी विरहोन्माद का ही सूचक है। इसी प्रकार कवि कालिदास ने इस अकं मे राजा दुष्यन्त के विरह का चित्रोपम वर्णन करते हुए विप्रलम्भ श्रृंगार की पूर्ण अभिव्यक्ति की है।

उपर्युक्त उद्धरणों के अनुशीलनों से यह ज्ञात होता है कि महाकवि कालिदास श्रृंगार के दोनों पक्षों अर्थात् संयोग श्रृंगार व वियोग श्रृंगार के चित्रण में पूर्ण रूप से सफल हुए है। सफलता की दृष्टि से दोनों ही पक्ष अपनी-अपनी महत्ताा को प्रकट कर रहे है। कवि कालिदास ने अभिज्ञान शाकुन्तलम् नाट्क में वियोग पक्ष के द्धारा संयोग पक्ष की पुष्टि की है। उपर्युक्त तथ्यों के विश्लेषण के माध्यम से यह स्पष्ट होता है, कि महाकवि कालिदास को श्रृंगार रस के परिपोषिता में सर्वाधिक सफलता मिली है। अभिज्ञानशाकुन्तलम् तो उसका केन्द्रबिन्दु ही बन गया है। इस प्रकार के श्रृंगार रस का चित्रण अन्यत्र कहीं पर भी नही हुआ है। कवि की कविताकामिनी श्रृंगार रस के मधुर-ललित भावों से विलसित हो उठी है।

अभिज्ञान शाकुन्तलम् में वर्णित अन्य सहायक रस

वात्सल्य विप्रलम्भ – अभिज्ञान शाकुन्तलम् के चतुर्थ अंक में शकुन्तला पतिगृहगमन के प्रसंग में कतिपय कवियों ने करूण रस की स्थिति माना है, तथा इसमें मुख्यत: करूण रस की ही अभिव्यक्ति को स्वीकार किया है। इस मान्यता का कारण सम्भवत: महाकवि भवभूति की यह उक्ति रही हो-**'एको रस करूण एव निमित्ताभेदाद्भिन्न पृथक् पृथगिवाश्रयते विर्वतान्।'** अत: इस श्रेणी के कवियों ने विप्रलम्भ को भी करूण करूण रस ही मान लिया है। यदि इस धारणा को माना जाये तब तो इसे करूण रस कहा जा सकता है, अन्यथा नही। इसे करूण रस मानने में शास्त्रीय दृष्टि से विरोध होगा, क्योंकि करूण रस का स्थायी भाव शोक है जो कि यहाँ कहीं भी नहीं देखा जाता। शकुन्तला तो पतिगृह जा रही है उसके प्रस्थान हेतु कौतुक मनाया जा रहा है। उसका मङ्ग्ल समालम्भन कर श्रृंगार प्रसाधन किया जा रहा है, उसे वीरप्रसविनी राजमहिषी भर्तुर्बहुमता होने का आशीर्वाद दिया जा रहा है। जब गमन करते समय वह रोती है तो उससे कहा जाता है-**'न त उचितं मङ्ग्लकाले रोदितुम्।'** स्वयं ऋषि कण्व कहते है-**'शान्ते करिष्यसि पदं पुनराश्रमेऽस्मिन्'** अत: मेरी दृष्टि मे यहाँ शोक के अभाव में करूण मानना उचित नहीं, अपितु यहाँ वात्सल्य विप्रलम्भ मानना प्रसंगानुकूल है।

(16) यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया, कण्ठ: स्तम्भितबाष्पवृतिकलुषश्चिन्ताजडं दर्शनम्।
वैवलव्यं मम तावदीदृशमिदं स्नेहादरण्यौकस: पीड्यन्ते गृहिण: कथं नु तनयाविश्लेषदु:खैर्नवै:।।

कवि का यह वात्सल्य विप्रलम्भ चित्रण अत्यन्त हृदयग्राही तथा अनुपम है तथा कालिदास की उत्कृष्ट प्रतिभा का निर्दशन है। सामान्यत: वात्सल्य विप्रलम्भ में माता-पिता का ही अपनी सन्तान के प्रति चित्ता का द्रवीकरण दिखलाया जाता है, परन्तु यहाँ तो माता-पिता और सखीजन के साथ-साथ सम्पूर्ण प्रकृति, पशु-पक्षी, लता वृक्षादि भी शकुन्तला की विदाई के समय द्रवित होते है, और महर्षि कण्व भी अपनी पालिता पुत्री शकुन्तला की विदाई के समय इतने दु:खी है जितने की एक गृहस्थ माता-पिता होते है।- [16]

अभिज्ञान शाकुन्तलम् के चतुर्थ अंक में वात्सल्य विप्रलम्भ रस अनुपम व हृदयास्पर्शी वर्णन है। इस कारण से चतुर्थ अंक अभिज्ञान शाकुन्तलम् नाट्क की आत्मा माना जाता है।

करुण विप्रलम्भ – अभिज्ञान शाकुन्तलम् में हमें करुण रस के भी दर्शन होतें है। प्रथम बार करुण रस का वर्णन चतुर्थ अंक में शकुन्तला की विदाई वेला के समय होता है उस विदाई वेला के समय करुणा का वातावरण छा जाता है। धीर व संयत महर्षि कण्व जैसे भी अपार करुण के सागर में डूब जातें है, जिस समय शकुन्तला कहती है कि, पिताजी आपका शरीर कठिन तपस्या के कारण कृश है अर्थात् कमजोर है अत: आप मेरे लिए अधिक व्याकुल व दु:खी न होवे। ऐसा कहकर महर्षि कण्व गहरी व लम्बी सांस लेकर कहते है कि हे पुत्री! तुम्हारे द्धारा पहले पूजा के रूप मे डाले गये और कुटी के द्धार पर उगे हुए नीवरों को देखते हुए मेरा यह शोक अथवा दु:ख कैसें शान्त होगा? अर्थात् यह शोक तो किसी भी प्रकार शान्त नहीं हो सकता है। इस प्रकार से विलाप करते हुए महर्षि कण्व कहते है -**'गच्छ शिवास्ते सन्तु:पन्थान:।'** अर्थात् 'जाओं! तुम्हारा मार्ग मंङ्गलमय हो।' दुसरी बार करुण रस का वर्णन पंचम अंक में दुष्यन्त द्धारा तिरस्कृत होकर रोती हुई शकुन्तला वहाँ से जाती है तब वह कहती है-**'भगवति वसुधे देहि मे विवरम्।'** उपर्युक्त इन स्थानों पर करुण विप्रलम्भ की स्थिति का वर्णन किया गया है।

वात्सल्य रस – अभिज्ञान शाकुन्तलम् में अन्य रसों के साथ-साथ वात्सल्य रस की भी सुन्दर अभिव्यंजना हुई है।

(17) आलक्ष्यदन्तमुकुलाननिमित्तहासैरव्यत्तवर्णरमणीयवच: प्रवृत्तीन्।
अङ्काश्रयप्रणयिनस्तनयान्वहन्तो धन्यास्तदङ्गरजसा मलिनीभवन्ति।।

राजा दुष्यन्त सर्वदमन को देखकर उसको प्यार करने के लिए लालायित हो उठता है। वह बालक को गोद में बैठाकर खिलाने को सौभाग्य समझता है-[17]

वह सर्वदमन के सुकोमल अंगो का स्पर्श कर परमानन्दानुभूति का अनुभव करता है। वह कहता है-

(18) अनेन कस्यापि कुलाङ्कुरेण स्पृष्टस्य गात्रेषु सुखं ममैवम्।
कां निर्वृति चेतसि तस्य कुर्याद् यस्यायमङ्गात् कृतिन: प्ररूढ:।।

अर्थात् किसी भी वंश के वंश के अंकुरस्वरूप इस बालक के स्पर्श होने पर मेरे अंङ्गों में इस प्रकार का सुख हो रहा है, तो जिस पुण्यात्मा की गोद से यह उत्पन्न हुआ है, उसके हृदय में कैसा अपूर्व आनन्द उत्पन्न कराता होगा।-[18]

हास्य रस – महाकवि कालिदास ने अभिज्ञान शाकुन्तलम् में शिष्ट व परिष्कृत हास्य की सुन्दर परियोजना की है, जिससे कवि की कविता-वनिता मुस्कुराती हुई सी दृष्टिगत होती है। शाकुन्तलम् में हास्य रस को परिपुष्ट करने का मुख्य श्रेय विदुषक को ही है, क्योंकि वह स्थान-स्थान पर अपने विचित्र वाक्य-विन्यासों के द्धारा हंसी के फव्वारों को छुड़वा देता है। मृगया व्यापार से श्रान्त होने से वह वन से वापस लौटना चाहता है क्योंकि न उसे अच्छा खाने को मिलता है न सोने को, लेकिन राजा को शकुन्तला दर्शन हो जाता है और वह राजधानी नहीं जाना चाहता तो विदूषक की उक्ति-**'गण्डकस्योपरि पिटक: संवृत:'** हास्य उत्पन्न करती है। राजा जब उससे शकुन्तला की प्रशंसा करता है तो वह हास्य व्यंग्य करता हुआ कहता है-**'यथा कस्यापि पिण्डखजूरैरुद्धेजितस्य तिन्तिण्यामभिलाषो भवेत्।'**

अर्थात् अपनी यह इच्छा ऐसी है जैसे कि किसी पिण्ड खर्जूर खा-खाकर छके हुए व्यक्ति की इच्छा खट्टी इमली खाने की होती हैं। राजा दुष्यन्त सभी परिजनों को अपने पास से हटा देता है तो विदूषक राजा को प्रसन्न करने हेतु कहता है कि अच्छा हुआ आपने सभी मक्खियाँ अपने पास से उड़ा दी-**'कृतं भवता निर्मक्षिकम्'।** पुन: एक प्रसंग मे जब राजा तापसी कन्या को क्षत्रिय जानकर विदूषक से बताता है कि वह उससे विवाह कर सकता है तो विदूषक

आमोद उत्पन्न करने वाली भाषा में कहता है–**'तेन हि लघु परित्रायतामेनां भवान्। मा कस्यापि तपस्विन इङ् गुदीतैलचिक्कणशीर्षस्य हस्ते पतिष्यति'।**राजा दुष्यन्त के पास एक समय में दो कार्य करने के लिये हो जाते हैं जिससे असमंजस में पड़कर राजा दुष्यन्त विदूषक से पूछता है कि क्या करना चाहिए? तो विदूषक कहता है कि तुम त्रिशंकु के समान बीच में ही लटके रहो–**'त्रिशङ्कु रिवान्तराले तिष्ठ'।**

पंचम् अंक में राजा विदूषक को हंसपदिका को समझाने भेजता है तब विदुषक कहता है कि वह मेरी चोटी पकड़कर दासियों से मुझे पिटवायेगी और त्रियाजाल में मुझे ऐसे फँसायेगी कि मै छूट नहीं पाऊँगा–**'भो वयस्य, गृहितस्य तया परकीयैर्हस्तै: शिखण्डके ताड्यमानस्याप्सरसा वीतरागस्येव नास्तीदानीं मे मोक्ष:।'**

षष्ठ अंक में राजा दुष्यन्त जब यह कहते हैं कि कामदेव आम्रमञ्जरी रूपी बाण मेरे ऊपर चला रहा है तो विदूषक डंडा उठाकर कहता है कि इस काठ के डण्डे से कामबाण को तोड़े देता हूँ–**'तिष्ठ तावत्! अनेन दण्डकाष्ठेन कन्दर्पव्याधिं नाशयिष्यामि'।** शकुन्तला की सखी प्रियंवदा भी परिहास कुशल है, वह भी कहीं–कहीं पर वह मीठी चुटकी लेकर लोगों को हँसा देती है। जब शकुन्तला अनसूया से प्रिसंवदा की शिकायत करती कि उसने चोली कसकर बांध दी है तो प्रियंवदा उत्तार देती है कि तुम अपने यौवन को उलाहना दो जिसने तुम्हारे कुचों को इतना बढ़ा दिया है। मेरी शिकायत से क्या लाभ? इस प्रकार से अभिज्ञान शाकुन्तलम् में हास्य रस का अतीव मनोहारी रूप से वर्णन किया गया है।

वीर रस – अभिज्ञान शाकुन्तलम् में वीर रस का वर्णन बहुत ही न्यून मात्रा में हुआ है। इसमें राजा दुष्यन्त की प्रशंसा की गयी है–

(19) का कथा बाणसंधाने ज्याशब्देनैव दूरत:।
हुँकारेणेव धनुष: स हि विध्नानपोहति।।

अर्थात् राजा दुष्यन्त की वीरता के बारे में कण्व शिष्य कहता है कि, यह अत्यन्त प्रभावशाली व शक्तिशाली महानुभाव है, जिसके बाण चढ़ाने की तो बात ही क्या है? क्योंकि वह दूर से प्रत्यञ्चा के शब्द से ही, मानो धनुष की हुंकार से विघ्नों को दुर कर देता है, इनके आश्रम में प्रवेश करते ही हमारे धार्मिक कार्य निर्विघ्न होने लगे है।–[19]

रौद्र रस – अभिज्ञान शाकुन्तलम् में रौद्र रस की पूर्ण रूप से निष्पत्ति तो नहीं हैं लेकीन एक–दो स्थान पर क्रोध भाव और आक्रोश भावों की व्यंजना हुई है। क्रुद्धित दुर्वासा ऋषि जब शकुन्तला को शाप देते समय रौद्र रस के दर्शन हुये है तथा इसके अतिरिक्त राजा दुष्यन्त द्वारा तिरस्कृत शकुन्तला की उक्तियों में आक्रोश का भाव अभिव्यंजित हुआ है। राजा दुष्यन्त व कण्व शिष्य के वार्तालाप के समय भी क्रोध भाव मुखरित होता है।

भयानक रस – अभिज्ञान शाकुन्तलम् में केवल तीन स्थानों पर भयानक रस के भावों की अभिव्यंजना हुई है पहला चित्रण प्रथम अंक में जहाँ भयभीत मृग के भागने का चित्रण किया गया हैं–**('ग्रीवाभग्नाभिरामम्.....।')** और दुसरा जहाँ अंक की समाप्ति पर रथ को देखकर भयाकुल हाथी के प्रवेश के चित्रण में–**(तीव्राघातप्रतिहततरू: .....।)** तथा तीसरा चित्रण तृतीय अंक में भयानक राक्षसों का यज्ञवेदी के चारों ओर मंडराने के समय भयानक रस का चित्रण हुआ है– (**'सायन्ते सवनकर्मणि.....।')** उपर्युक्त प्रसंगों मे भयानक रस की अनुभूति होती है।

अद्भुत रस – अभिज्ञान शाकुन्तलम् में कथानक के बीच में कतिपय स्थल अद्भुत रस के दर्शन होते है। चतुर्थ अंक में जहाँ आकाशवाणी के द्वारा महर्षि कण्व को शकुन्तला व दुष्यन्त के गान्धर्व विवाह का ज्ञान होना व शकुन्तला के गर्भवती होने की सूचना मिलना तथा शकुन्तला की विदाई के समय वृक्षों द्वारा वस्त्राभूषण आदि देना। पंचम अंक में मेनका द्वारा शकुन्तला को उठाकर ले जाना। दुष्यन्त का इन्द्रलोक से लौटते समय आकाश से पृथ्वी तक का वर्णन आदि प्रसंगों में अद्भुत रस अभिव्यक्त हुआ हैं।

शान्त रस – अभिज्ञान शाकुन्तलम् के सप्तम अंक में मारीच ऋषि के आश्रम में शान्त रस की स्थिति को अभिव्यक्त किया गया है। राजा दुष्यन्त को आश्रम का शान्त वातावरण अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। वह उस आश्रम स्वर्ग से भी अधिक महत्व देता है और कहता है कि मैं मानो सुवास सरोवर मे स्नान कर रहां हूँ। वह वहाँ ऋषि मुनियों तपस्या का गुणगान करता है। वह महर्षि मारीच की प्रशंसा करता हुआ वह तृप्ति का अनुभव नही करता अर्थात् मन की शान्ति का अहसास करता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. महाकवि कालिदास रचित –अभिज्ञान शाकुन्तलम्, संपादक, समीक्षक, व्याख्याकार– डॉ. शिव बालक द्विवेदी, प्रकाशक – हंसा प्रकाशन, चॉदपोल बाजार, जयपुर, (राज.) प्रथम संस्करण 2009 **ISBN- 9788188257690**

अनुक्रमणिका:–

1. सरसिजम् . . . .नाकृतीनाम्। अभि. शा. 1/20
2. अधर: किसलय . . . . सन्नद्धम्। अभि. शा. 1/21
3. चलापाङ्ग् . . . .खलु कृती। अभि. शा. 1/24
4. वाचं न मिश्रयति . . . .दृष्टिरस्या:। अभि. शा. 1/32
5. स्निग्धं वीक्षितमन्यतोऽपि . ..कामी स्वतां पश्यति। अभि. शा. 2/2
6. अनाघ्रातं . . . . . समुपस्थास्यति विधि:।अभि. शा. 2/11
7. अभिमुखे . . . .च संवृत:। अभि. शा. 2/12
8. किं शीतलै: . . . .पद्मतामौ। अभि. शा. 3/18
9. तव कुसुमशरत्वं . . .. वज्रसारीकरोषि।अभि. शा. 3/3
10. इदम् शिशिरै . . . .प्रतिसार्यते।अभि. शा. 3/10
11. क्षामक्षाम् . . . .लता माधवी। अभि. शा. 3/7
12. अयं स ते . . . .कथमीप्सितो भवेत्। अभि. शा. 3/11
13. तपति तनुरात्रि . . . .कुमदवतीं दिवस:। अभि. शा. 3/14
14. रम्यं द्वेष्टि . . . .व्रीडाविलक्षश्चिरम्। अभि. शा. 6/5
15. मुनिसुताप्रणय . . . . निवेशित। अभि. शा. 6/8
16. यास्यत्यद्य . . . . तनया विश्लेषदु:खखैर्नवै। अभि. शा. 4/6
17. आलक्ष्यदन्त . . . .मलिनीभवन्ति। अभि.शा. 7/17
18. अनेन कस्यापि . . . .कृतिन: प्ररुढ:।अभि. शा. 7/19
19. का कथा बाणसंधानें . . . . विघ्नानपोहति ।अभि. शा. 3/1

****